उस प्रतिभाशाली को सलाम

आमोद कारखानीस

चीन के किसी प्रान्तीय अधिकारी के दफ्तर में शुंग लुंग और तांग ची आपस में काम को लेकर बात कर रहे थे। ध्यान रखिए कि यह बातचीत ईसा पूर्व के समय की है।

"आपके द्वारा किसानों से एकत्रित की गई रकम और हिसाब में मेल नहीं हो रहा है। और आपने कितने गंदे तरीके से लिखकर हिसाब बनाया है।"

जवाब मिलता है, "गंदा तरीका, क्या कहते हो? दिनभर में रकम वसूली के लिए दस-दस गाँव घूमने पड़ते हैं। बैठने के लिए कोई जगह भी नहीं। कई बार तो खड़े-खड़े ही हिसाब लिखना होता है। तो ऐसे में सुन्दर लिखावट में साफ-सुथरा कैसे लिखा जाएगा।"

"हाँ, मुझे आपकी दिक्कतों के बारे में पता है। लेकिन हिसाब में संख्याएँ तो स्पष्टता के साथ लिखी होना चाहिए न। यहाँ देखिए, 28 लिखा है या 208? और हमें यहाँ बैठकर कैसे पता चलेगा कि किसान के पास कितनी ज़मीन है? इसी वजह से हिसाब का मिलान नहीं हो पाता।"

चित्र: मधुमिता बेरा

ऊपर दो लोगों के बीच हो रही बातचीत को पढ़कर आपको भी हैरानी हो रही होगी। उस प्रान्तीय अधिकारी को संख्या को पढ़ने में ऐसी दिक्कत क्यों हो रही होगी जिसकी वजह से हिसाब में इतनी उथल-पुथल मची है?

प्राचीन चीन में संख्या लेखन

चलिए, यह जानने की कोशिश करते हैं कि चीन में उस समय संख्याएँ लिखने का कौन-सा तरीका प्रचलन में

चित्र-1

था। भारत और चीन में स्थानीय मान का इस्तेमाल करते हुए संख्याएँ लिखने का तरीका प्रचलित हुए काफी समय गुज़र चुका था। कागज़ की खोज होने के बाद चीन में इसका इस्तेमाल काफी बढ़ गया था। उस समय चीन के सम्राट का साम्राज्य पूरब में जापान से पश्चिम में कज़ाकिस्तान तक फैला हुआ था। साम्राज्य को कई प्रान्तों में बाँटा गया था। प्रान्त के प्रमुख अधिकारी सभी प्रशासनिक ज़िम्मेदारियों को सँभालते थे। इसके तहत वे विविध कर-वसूली भी करते थे, सड़कें, पेयजल जैसी सुविधाओं की ओर भी ध्यान देते थे, साथ ही अदालत में फैसले सुनाना, सैनिकों को वेतन देना जैसे कई काम उन्हें करने होते थे। इन सभी कामों की रिपोर्ट समय-समय पर अपने ऊपर के अधिकारियों को भी भेजनी होती थी।

इतना समय गुज़र जाने के बाद भी चीन में उस समय की ऐसी कुछ रिपोर्ट व विद्वानों के ग्रन्थ अभी भी उपलब्ध हैं। इन्हें देखकर उस समय स्थानीय मान का इस्तेमाल करते हुए संख्याएँ किस तरह लिखी जाती थीं, इसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनके मुताबिक, 1 से 9 तक की संख्याओं को अलग-अलग चिन्हों से दर्शाया जाता था। जहाँ कुछ नहीं हो, वहाँ जगह को खाली छोड़ दिया जाता था (चित्र-1)।

जैसे-जैसे रिपोर्ट में बहुत सारी संख्याएँ लिखी जाने लगीं वैसे-वैसे संख्या लेखन में खाली जगह छोड़ी गई है या नहीं, इसे लेकर भ्रम बढ़ने लगा। लिखी हुई संख्या 208 है या 280 या 28 – ऐसे भ्रम बढ़ते गए। इस परेशानी को हल करने का कोई तरीका तो खोजा जाए, इस पहल के तहत सभी विषम घात वाले इकाई, सैकड़ा, दस हज़ार आदि को खड़ा लिखा जाने लगा। और सम घात वाले दहाई, सैकड़ा, हज़ार और लाख को आड़ा लिखा जाने लगा (चित्र-2)।

इस तरीके की वजह से थोड़ी स्पष्टता आई। यह तरीका काफी समय तक चलता रहा। इसके साथ ही धनात्मक अंक काले रंग और ऋणात्मक अंक लाल रंग से लिखने की परम्परा भी शुरू हुई। इन तमाम कोशिशों से समस्या का कुछ हद तक हल निकल आया था। फिर भी

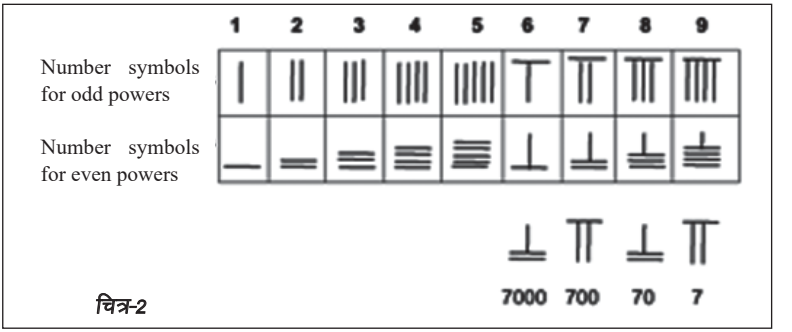

चित्र-2

ऊपर के इन अंकों को लेकर रोज़ ही बहस होती रहती थी। जैसे-जैसे व्यापार बढ़ता गया वैसे-वैसे यह तरीका भी कमतर साबित होने लगा था।

क्या उस समय संख्याओं को लिखने सम्बन्धी दिक्कतें भारत या कहीं और भी दिखाई दे रही थीं?

स्थानीय मान के बिना संख्या लेखन

जहाँ स्थानीय मान का उपयोग करते हुए संख्याएँ नहीं लिखी जा रही थीं, वहाँ तो शायद ऐसी कोई समस्या सामने नहीं आ रही थी।

इस बात के प्रमाण कम ही उपलब्ध हैं कि इस चुनौती के सिलसिले में भारत के लोग क्या करते थे। हमारी परम्परा मौखिक ज़्यादा रही है। अंकों के उच्चारण में किसी जगह शून्य होने पर हम उसका उल्लेख नहीं करते। जैसे 2013 कहना हो तो दो हज़ार तेरह ही बोलते हैं। शायद ही कभी हम दो हज़ार, शून्य सैकड़ा और तेरह बोलते होंगे।

आर्यभट्ट की वैज्ञानिक दृष्टि

भारत गणित में लगातार तरक्की कर रहा था। गुप्तकाल के राजाओं द्वारा उस समय कई विद्वानों को राज्याश्रय दिया गया था जिसकी वजह से ज्ञान की कई शाखाओं में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस दौर में गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्रों में चमचमाता तारा था आर्यभट्ट।

आर्यभट्ट में रोज़मर्रा की घटनाओं या अवलोकनों की गहराई में जाकर विश्लेषण करने की ज़बरदस्त क्षमता थी। उदाहरण के लिए, हम रेलगाड़ी में सफर करते हैं तब डिब्बे के भीतर बैठे सहयात्री तो सापेक्ष रूप से स्थिर रहते हैं लेकिन डिब्बे के बाहर के पेड़, खम्बे, इमारतें, खेत पीछे जाते हुए प्रतीत होते हैं। हम तो अक्सर गीत भी गुनगुनाते हैं –

देखते हुए पीछे दौड़ते दरख्तों को,
और पहुँच जाएँगे मामा के घर को।

आर्यभट्ट के दौर में रेलगाड़ी तो नहीं थी इसलिए रेलगाड़ी की सवारी

का अनुभव उन्हें नहीं था। लेकिन वे पाटलीपुत्र के निवासी थे इसलिए गंगा के लम्बे-चौड़े किनारों पर नाव से सफर का उनका अनुभव वृहद था। नदी की धार में नाव पर सफर करते समय नाव पर सवार लोग तो सापेक्षिक रूप से स्थिर रहते हैं लेकिन किनारे के पेड़ और इमारतें तो पीछे जाती हुई प्रतीत होती हैं।

हालाँकि, यह एक सामान्य-सी दिखने वाली बात है, और रोज़मर्रा के जीवन में शायद ही कोई इस पर बहुत सोच-विचार करता हो। आर्यभट्ट ने इस अनुभव को एक नए स्तर पर ले जाकर इसे खगोल शास्त्र से जोड़ा। उस समय यह माना जाता था कि पृथ्वी स्थिर है और पूरा आकाश उसके चारों ओर घूमता है। इसके विपरीत, आर्यभट्ट का मानना था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन और रात होते हैं। हमें भले ही सूर्य और तारे चलते हुए प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में पृथ्वी ही घूम रही होती है।

इसके अलावा, उन्होंने यह भी बताया कि पृथ्वी गोलाकार है। उस समय यह विचार रखना भी अत्यन्त साहस का काम था। उन्होंने पृथ्वी के अध्ययन के लिए 'भूगोल' शब्द का प्रयोग किया। अब अगला सवाल था कि यदि धरती गोल है तो उसका व्यास कितना है और वो अपनी धुरी पर कितने समय में एक चक्कर पूरा कर लेती है।

शून्य का क्रान्तिकारी योगदान

ऐसे सवालों के जवाब खोजने के लिए सूक्ष्म अवलोकनों और जटिल गणनाओं की ज़रूरत थी। इतने विस्तृत गणितीय कार्य के लिए केवल 1 से 9 तक के अंक पर्याप्त नहीं थे। संख्याओं को सटीकता से लिखने के लिए एक और अंक की ज़रूरत पड़ी और वो अंक था, शून्य।

आर्यभट्ट के कार्यों का प्रभाव उनके अनेक समकालीन गणितज्ञों और खगोलशास्त्रियों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सरसरी तौर पर, ईस्वी सन् की शुरुआत से लेकर 600 ईस्वी तक रचे गए कई ग्रन्थों में 'शून्य' का ज़िक्र मिलता है। वराहमिहिर के 'पंचसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में भी शून्य का ज़िक्र है। इसी प्रकार जिनभद्रगणि के ग्रन्थ में 2,24,40,00,00,000 जैसी बड़ी संख्या का उल्लेख मिलता है, जिसे 'बाइस चवालिस पर आठ शून्य' कहा गया है।

उस समय भारत में अत्यन्त विशाल संख्याओं के साथ गणना की जाती थी, जिसका एक उदाहरण सिद्धसेनगणि के ग्रन्थ में मिलता है। इसमें 35,34,40,00,00,000 जैसी संख्या का वर्गमूल निकालने का उल्लेख है, जिसमें चार शून्य आते हैं और उसका वर्गमूल 18,80,000 बताया गया है।

धीरे-धीरे शून्य का इस्तेमाल काफी

जगहों पर होने लगा। ग्वालियर के भोजदेव मन्दिर में मौजूद एक शिलालेख में 870 अंक लिखा हुआ मिलता है, जो शून्य के प्रयोग का एक ठोस प्रमाण है। इसके अलावा, शून्य का प्रसार भारत से बाहर भी हुआ। कंबोडिया के प्राचीन हिन्दू मन्दिरों में मौजूद कुछ शिलालेखों में भी शून्य के इस्तेमाल के प्रमाण मिलते हैं।

शून्य की स्वीकृति व वैचारिक संघर्ष

फिर चीन के दो लोगों – शुंग लुंग और तांग ची का क्या हुआ? उनकी समस्या का क्या कोई समाधान निकल पाया?

उनकी समस्या का हल कुछ इस तरह निकला कि भारतीय व्यापारियों और यात्रियों के माध्यम से शून्य का चिन्ह और अंक चीन तक पहुँच गए। भारतीय मूल के, लेकिन चीन में निवास करने वाले खगोलविद् गौतमन सिद्ध ने चीनी अंकों के साथ शून्य के इस्तेमाल की जानकारी सभी को दी, जिसे बाद में स्वीकार भी कर लिया गया।

शून्य का सफर चीन तक तो पहुँच चुका था लेकिन यूरोप का क्या हुआ? वहाँ गणित और खगोल का अध्ययन दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता था, इसलिए वहाँ धर्म, दर्शन और विज्ञान के धागे आपस में गुँथे हुए दिखाई देते थे। कभी इस बात का फायदा होता था तो कभी इन धागों में उलझकर आप गिर भी सकते थे – शून्य का भी ऐसा ही कुछ हुआ। हालाँकि, इण्डो-अरेबिक अंकों को स्वीकार कर लिया गया था, फिर भी 'कुछ नहीं' के लिए किसी चिन्ह की आवश्यकता है या नहीं, इस पर मतभेद बने रहे। आखिरकार, बीच का रास्ता यह निकाला गया कि एक से

चित्र-4: *ग्वालियर के भोजदेव मन्दिर में स्थित शिलालेख पर शून्य का उपयोग।*

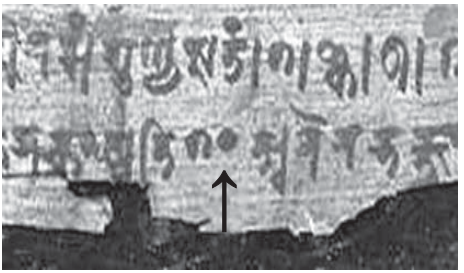

चित्र-5: *बक्षाली हस्तलिखित में शून्य। बक्षाली पाण्डुलिपि की खोज सन् 1881 में पेशावर के पास बक्षाली में हुई थी। यह लगभग तीसरी से दसवीं शताब्दी ईस्वी के बीच की मानी जाती है।*

चित्र-6: *महान गणितज्ञ - आर्यभट्ट।*

नौ तक की संख्याएँ तो थीं ही, तो क्यों नहीं खाली स्थान को दर्शाने के लिए शून्य का इस्तेमाल किया जाए।

कुछ विचारधाराओं में यह भी माना जाता था कि जैसी कि कहावत है 'खाली दिमाग शैतान का घर' होता है, वैसे ही कुछ नहीं के लिए जो चिन्ह है, वो शैतान का प्रतीक है। इसलिए पवित्र ग्रन्थों में इस चिन्ह को जगह नहीं मिलनी चाहिए। लेकिन विज्ञान की तरक्की में पुरातन मान्यताएँ भी अवरोध नहीं बन सकीं और आखिरकार तर्क और विवेक की ही जीत हुई।

शून्य केवल एक संकेत है या एक संख्या भी – यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। आप कह सकते हैं कि इससे क्या फर्क पड़ता है। संख्या भी बुनियादी तौर पर एक अमूर्त विचार है। किसी वस्तु-समूह को 'तीन का समूह' या 'आठ का समूह' कहकर हम उसे एक रूप देते हैं और फिर उसे दर्शाने के लिए एक चिन्ह गढ़ते हैं, यहाँ तक तो सब ठीक था। लेकिन 'कुछ भी नहीं' के समूह को एक चिन्ह से व्यक्त करना, और उस चिन्ह के माध्यम से एक गहरी अवधारणा को प्रस्तुत करना, मानव बुद्धि की एक विशाल छलांग थी। आर्यभट्ट ने शून्य को सिर्फ खाली स्थान नहीं बल्कि उसे अन्य संख्याओं की तरह एक संख्या का दर्जा भी दिया।

इसी सोच के कारण भारत में गणित ने एक लम्बी उड़ान भरी। शून्य को लेकर इस नए विचार के लिए इस प्रतिभाशाली गणितज्ञ को सलाम।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।